“मराठी सामाजिक नाटक: प्रारंभ से १९२० तक”

डॉ. संदीप कदम,
साठये महाविद्यालय, विले पार्ले, मुंबई, महाराष्ट्र
मो. ७३०४५३६३१२, ९९८७८६१३८८

मराठी प्रारंभिक नाटक:

मराठी नाटक का जन्म अनेक लोक कलाओं से हुआ है। महाराष्ट्र में लोक रंगमंच के विभिन्न रूप प्रचलित हैं। इन प्रकारों में भरुड़, ललित, दशावतार, कीर्तन, तमाशा, पोवाड़ा आदि शामिल हैं। पोवाड़ा भी लोकनाट्य का एक पुराना रूप है। 1660 के आस-पास अज्ञानदास द्वारा लिखित 'अफझुलखान वध' यह एक पोवाड़ा है। कहा जा सकता है कि यह लोकनाट्य का राजनीतिक पक्ष है अथवा लोकनाट्य में राजनीति का सीधा प्रवेश है। शिवाजी महाराज के समय से ही 'राजनीति' मराठी जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी। यह राजनीतिक जीवन मराठी लोकनाट्य में प्रतिबिंबित हुए बिना नहीं रह सका। इसके अलावा तंजावरी नाटक 'लक्ष्मी नारायणकल्याण' का उल्लेख सबसे पुराने उपलब्ध लिखित नाटक के रूप में किया गया है। माना जाता है कि इन सबके प्रभाव से ही सबसे पहले मराठी रंगमंच पर नाटक 'सीतास्वयंवर' आया।

मराठी थिएटर की शुरुआत सांगली में विष्णुदास भावे के 'सीता स्वयंवर' (1843) से हुई थी, ऐसा माना जाता है कि यह नाटक एक पौराणिक कहानी पर आधारित है। यह नाटक पौराणिक कहानी की कई सुलभ संरचनाओं, पात्रों एवं संगीत के आधार पर बनाया गया है। इसे विष्णुदास भावे के नाटक 'दशावतारी खेल' का सुसंस्कृत रूप कहा जा सकता है।

काशीबाई फड़के ने 'संगीत सीताशुद्धी' (1887) नाटक लिखा। उनके पिता ने इस नाटक को 1897 में प्रकाशित किया था। सोनाबाई केरकर का 'संगीत छत्रपति संभाजी' (प्रयोग 1896) यह पांच अंकों का ऐतिहासिक नाटक है। उनका यह नाटक मुद्रित पुस्तक के रूप में ई. 1876 में प्रकाशित हुआ। चूंकि यह 1876 में प्रकाशित हुअ था, इसलिए इसे मराठी महिला नाटककारों में पहली महिला नाटककार माना जाता है। उसके बाद काशीबाई फड़के, हीराबाई पेडणेकर, गिरिजाबाई केलकर नाटक लिखते नजर आते हैं। हीराबाई पेडनेकर द्वारा संगीत दामिनी; गिरिजाबाई केलकर का सामाजिक नाटक ‘गृहिणीभूषण’ 1912 ई. में प्रकाशित हुई थी। इस नाटक में बाल विवाह की समस्या नाटक के कथानक में गुँथी हुई है।

उस समय के समाज की सामाजिक-राजनीतिक जागरूकता को महात्मा फुले (जोतीराव गोविंदराव फुले) की ‘तृतीय रत्न’ (1856) से महसूस किया जा सकता है। 'तृतीय रत्न' में प्रस्तुत हिंदू धर्म का दर्शन अभिजात वर्ग के लिए पचने योग्य नहीं था। इस पर विचार करने पर आरंभिक मराठी सामाजिक नाटक सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से घटित हुआ प्रतीत होता है। सत्ता

विरोध के संदर्भ में ज्ञानोदय की शुरुआत फूलों से हुई लगती है। कहा जा सकता है कि उनका यह क्रांतिकारी कदम एक सोच-समझकर किया गया नाटक लेखन है। नाटक की पृष्ठभूमि सामाजिक विषयवस्तु थी। प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य भारतीय जाति व्यवस्था के पदानुक्रम को उजागर करना था, इसलिए नाटक को 'दक्षिणा प्राइस कमिटी' द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया गया था। हालाँकि,इस नाटक को पहला मराठी सामाजिक नाटक कहा जा सकता है।

प्रस्तुत नाटक में एक ग्रामीण परिवार की कहानी है। इसमें दर्शाया गया है कि कैसे एक पूंजीपति यानी उच्च वर्ग, जो उस समय का माना जाता था, वह गरीब, अशिक्षित वर्ग को धोखा दे रहा था। एक किसान और उसकी पत्नी को एक स्थानीय ब्राह्मण (पुजारी) ने धार्मिक रूप से धोखा दिया है। इसी के इर्दगिर्द कथानक बुना गया है|

प्रस्तुत नाटक की शुरुआत में महात्मा फुले नाटक के कथानक के बारे में लिखते हैं, 'मैं यहां लिखूंगा कि कैसे पहले माली के परिवार का बच्चा अपनी मां के गर्भ में रहना शुरू करता है तब ब्राह्मण जोशी उसके घर पर आकर उसे झूठी बाते बताकर उसको द्रव्यहीन कैसे करता है, इसके बारे मै यहाँ लिखूंगा।

नाटक की शुरुआत निम्नलिखित संवाद के माध्यम से देखी जा सकती है।

"महिला: महाराज, क्या? क्या हुआ? क्या यह भिक्षा नहीं है? मैं एक गरीब स्त्री हूं, मेरे पति केवल चार रुपये प्रति माह कमाते हैं।

जोशी : कौन कहेगा कि यह भिक्षा नहीं है? लेकिन इतनी भिक्षा से मैं अपना पेट कैसे भर पाऊंगा? और मुझे आपके कल्याण की चिंता कैसे करनी चाहिए?

स्त्री : जाओ, ब्राह्मण का हठ बड़ा होता है! हम आपके पेट का ख्याल कब तक करेंगे? आप कोई रोजगार, व्यवसाय करो?

जोशी: (रोजगार धंधा करना हमारे माथे पर लिखा है, इसमे तुमने क्या बडा कहा है, ऐसा मन मे बोलकर) यह सच है। लेकिन, आपके पड़ोसी की तरह, आपको कोई नुकसान नहीं होगा और आपको आगे बोलने की अनुमति नहीं दी जाएगी!

स्त्री : (मानो कुछ देर तक सोचते हुए) उस स्त्री का बच्चा अपने ही भाग्य से मर गया।

जोशी : हाँ हाँ, क्या अपने भाग्य से मरे?

महिला: किस्मत से नहीं तो किससे? क्या आपको ज्यादा कुछ नहीं दिया गया इसलीये मरा क्या?

जोशी: शायद थोड़ा सा, लेकिन यह हमारी संतुष्टि के लिए होना चाहिए।

महिला: यदि वह आपकी संतुष्टि के अनुसार देती तो क्या आप उसके बच्चे को बचा लेते?

जोशी: इसमें संदेह क्या है? यदि उसने मुझे संतुष्ट कर दिया होता तो निश्चय ही मैं उस बच्चे के सारे कष्ट दूर कर देता और वह पुत्रवती हुई होती?"1 (तृतीय रत्न, पृ. 1)

नाटक बताता है कि शिक्षा खुद को और समाज को धोखाधड़ी और शोषण से मुक्त करने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। नाटक के अंत में यह कृषक परिवार फुले दंपत्ति के रात्रि स्कूल में जाने का निर्णय लेता है। यह भावी पीढ़ियों के भविष्य 'बनाने' का संकेत है।

मराठी नाटक और अन्य भाषाओं का नाटक:

विष्णुदास भावे से लेकर 1896 तक महाराष्ट्र में कई नाटक मंडलियों ने नाटक किये। उदाहरण के लिए, धोंडोपंत सांगलीकर, राघोपंत इचलकरंजीकर, नरहरबुवा कोल्हापुरकर जैसी नाटक मंडलियों ने मंच पर पौराणिक नाटकों का प्रदर्शन किया। इसके बाद के कालखंड को ध्यान में रखें तो मराठी नाटक शहरी संस्कृति की छाया में आधुनिक नाटक के रूप में विकास की ओर बढ़ने लगा। यह सत्य है कि इस काल में शहर के अभिजात वर्ग का नाटक कला की ओर अधिक आकर्षण हुआ। 19वीं सदी में महाराष्ट्र में अंग्रेज अपने मनोरंजन के लिए शेक्सपियर के नाटक 'ओपेरा' को भारत लाए। इसके अलावा, पारसी मंडलियों ने भी अंग्रेजी नाटकों की नकल में पारसी थिएटर पर विभिन्न नाटक प्रस्तुत किए। मराठी नाटक मुख्यतः संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों के प्रभाव में प्रदर्शित किये गये। साथ ही अंग्रेजी और संस्कृत नाटकों के अनुवाद से धीरे-धीरे मराठी रंगमंच का विकास हुआ।

अनूदित मराठी नाटक परंपरा:

1800 से 1874 तक का काल 'भाषांतर युग' के नाम से जाना जाता है। इस अवधि के दौरान कई सामग्रियों का अनुवाद और रूपांतरण किया गया। इसमें उपयोगी सामग्री बनाने के उद्देश्य से कई भाषाओं की सामग्री को मराठी में लाया गया। 'दक्षिणा प्राइस समिति' संस्था ने संस्कृत नाटकों का मराठी अनुवाद किया और इसी परंपरा में मुद्रण के विकास के साथ कई नाटक भी छपे। ऐसे अनुवाद अंग्रेजी नाटकों के साथ-साथ संस्कृत नाटकों के भी किये गये। मुख्यत: इन नाटकों को प्रायोगिक तौर पर भी मंच पर प्रदर्शित किया जाता था|

माना जाता है कि इस मराठी नाटक का अनुवाद परंपरा सदाशिव बाजबाशास्त्री अमरापुरकर और रावजी बापूजीशास्त्री बापट ने संस्कृत नाटक 'प्रबोध चंद्रोदय' (1851) के अनुवाद के माध्यम से किया था। परशुरामत्य गोडबोले ने संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया है। उन्होंने 'वेणीसंहार' (1857), 'उत्तररामचरित' (1859), 'शाकुंतल' (1861), 'मृच्छकटिक' (1862), पार्वती परिणय' (1872) नाटकों का संस्कृत से मराठी में अनुवाद किया। इसके अलावा कृष्णशास्त्री राजवाड़े ने 'विक्रमोर्वशीय' (1861), 'मुद्राराक्षस' (1867), 'शाकुंतल' (1869) और 'गणेशशास्त्री' लेले ने 'जानकी परिणय' (1865), 'कर्पूरमंजरी' (1877) नाटकों का संस्कृत से मराठी में अनुवाद किया। महादेव शास्त्री

कोल्हटकर एवं वि.ज.कीर्तने ने 'ओथेलो'(1867), 'टेम्पेस्ट' (1875) नाटकों को मराठी में लाया। इसके अलावा विष्णु मोरेश्वर महाजनी ने 'जूलियस सीज़र' का 'विजय सिंह' (1872) और 'सिम्बलाइन' का 'तार' यह रूपांतरण किया,वह भी उल्लेखनीय थे।

स्वतंत्र मराठी नाटक:

नाटक के संस्कृत और अंग्रेजी अनुवादों ने भारतीय दर्शकों को पसंद किया। नाटक को मंच पर एक पेशे के रूप में स्थापित करने का भी प्रयास किया गया। इस काल में नाट्य परंपरा में स्वतंत्र नाटक लिखने का भी प्रयास किया गया। वि. ज कीर्तने ने पहला स्वतंत्र मराठी नाटक 'थोरले माधवराव पेशवा' (1861) लिखा। कीर्तने ने 'ऐतिहासिक' व्यक्तित्वों और स्थितियों को दर्शाते हुए यह नाटक बनाया है। उनके नाटक में ऐतिहासिकता एवं समसामयिक स्थिति का संगम होता हुआ प्रतीत होता है। इसके अलावा नाटक 'जयपाल' (1865) में उन्होंने प्रगतिशील सोच और नवीनता का परिचय दिया है। नाटक के परिवर्तन में मनोहर बालकृष्ण चितले का नाटक 'मनोरमा' (1871) महत्वपूर्ण बन गया। 'मनोरमा' नाटक नारी उत्थान पर प्रगतिशील दृष्टिकोण रखता है। यह हमें इस बात से अवगत कराता है कि पारंपरिक धार्मिक प्रथाओं और सामाजिक परिस्थितियों से लड़कियों के भविष्य को कैसे खतरा है? नाटक में बाल विवाह, बाल विवाह के माध्यम से समाज में बढ़ रहे अन्याय का चित्रण किया गया है। 'मनोरमा' नाटक नाटकीयता और नाटकलेखन की प्रेरणा दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मराठी संगीत नाटक:

अन्नासाहेब किर्लोस्कर को मराठी संगीत थिएटर के जनक के रूप में सम्मानित किया गया है। किर्लोस्करजी का नाटक 'शाकुंतल' बहुत लोकप्रिय हुआ। इस नाटक ने संगीत नाटक के एक नए युग की शुरुआत की। अन्नासाहेब किर्लोस्कर ने 'शंकर दिग्विजय' (1873), 'शाकुंतल' (1880), 'सौभद्र' (1882), 'रामराज्यवियोग' (1884) यह नाटक लिखे। किलोस्कर का नाटक 'संगीत सौभद्र' अत्यधिक प्रभावशाली एवं प्रयोगात्मक सिद्ध हुआ। 'संगीत सौभद्र' नाटक की कहानी भले ही पौराणिक है, लेकिन यह आधुनिक दर्शकों की पकड़ बन गई है। इस नाटक की सफलता का कारण नाटक में हास्य, करुणा और सौन्दर्य की प्रचुरता है। किर्लोस्कर की असामयिक मृत्यु के कारण नाटक 'रामराज्य वियोग' (1884) अधूरा रह गया। ऐसा प्रतीत होता है कि किर्लोस्करजी ने संस्कृत नाटक का अनुसरण किया और अपने नाटकों में संगीत का उपयोग किया। किर्लोस्कर के पौराणिक नाटकों की संगीतमय नाट्य प्रस्तुति घर-घर पहुँच चुकी थी। किर्लोस्करजी की 'किर्लोस्कर

नाटक मंडली' नाट्य संस्था महाराष्ट्र के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में एक महत्वपूर्ण कामगिरी करनेवाली रही है। अन्नासोहब किर्लोस्कर ने पौराणिक रंगमंच परंपरा में संगीत जोड़कर मराठी रंगमंच के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साथ ही, किर्लोस्कर ने पौराणिक नाटक के देवी-देवताओं को मानवीय रूप दिया। चित्रण इसलिए बनाया गया है ताकि दर्शक व्यक्तिगत अनुभव के स्तर के साथ पात्रों और स्थितियों की गहराई में प्रवेश करके इसका आनंद ले सकें। उनके नाटक की भाषा अधिक पात्रात्मक एवं परिस्थितिजन्य प्रतीत होती है।

अन्नासाहेब किर्लोस्कर के बाद अन्ना मार्तंड जोशी ने मराठी नाटक के माध्यम से सामाजिक चिंतन को पाठकों और दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया। अन्ना मार्तंड जोशी के नाटक 'संगीत सावित्री' (1888) और 'सौभाग्यरमा' (1890) ने 'महिला शिक्षा' और 'वयस्क विवाह' के बारे मे सुधारवादी विचारों को सामने रखा। इसके अलावा नाटककार नारायण बापूजी कानिटकर ने तीन नाटकों 'तरुणीशिक्षण नाटिका' (1886), 'संमति कायद्याचे नाटक' (1892) और 'न्यायविजय' (1892) के माध्यम से सामाजिक मुद्दों को जनता के सामने रखा है।

सामाजिक नाटक की रुपरेखा:

कुछ मराठी नाटककारों ने सामाजिक चेतना लाने के लिए सामाजिक मुद्दों के माध्यम से समाज को जागरूक किया है। ऐसे सामाजिक नाटकों का अध्ययन करते समय एक मॉडल बनाकर उसका 'कल' और 'आज' के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना आवश्यक है। एक वस्तुनिष्ठ रूपरेखा सामने रखना भी आवश्यक है। सामाजिक नाटकों के अध्ययन के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से एक रूपरेखा बनाकर अध्ययन किया जा सकता है:-

1. थिएटर का माहौल सामाजिक भूमिकाओं के बारे में वस्तुनिष्ठ रूप से संचार करता है।
2. सामाजिक नाटक सामाजिक जीवन के ग्राफ को तार्किक रूप में प्रस्तुत करता है।
3. पारिवारिक समय के माध्यम से व्यक्तियों, समाजों के कार्य सामाजिक होते हैं।
4. समाज में समस्याओं का विश्लेषण विभिन्न पर्यावरणीय (स्थितिजन्य) कारकों का विश्लेषण और व्याख्या करता है।
5. यह वास्तविकता की तह प्रस्तुत करके वास्तविकता की स्थिति का अवलोकन भी करता है।
6. सामाजिक दृष्टि, जो सत्य है, शाश्वत है उसके स्वरूप का अन्वेषण करती है।

निम्नलिखित में से कुछ नाटककारों और नाटकों का उपरोक्त रूपांकनों के साथ चिकित्सकीय अध्ययन किया जा सकता है।

'संगीत शारदा'

गोविंद बल्लाल देवल किर्लोस्करजी को गुरुस्थानी मानते थे। 'दुर्गा' (1886) अंग्रेजी नाटक 'इसाबेला' पर आधारित उनके द्वारा लिखा गया एक शोकात्मक नाटक है। 'मृच्छकटिक' (1886) शूद्रक के नाटक से लिया गया था। उन्होंने शेक्सपियर के 'ऑथेल्लो' से 'झुंझाररार्व (1890) और मर्फी के 'ऑल इन द रॉग' से 'संगीत संशयकल्लोळ' (1916) में भी रूपांतरित किया। गोविंद देवल के ये नाटक रूपांतरित होते हुए भी इन्हें भारतीय नैतिकता का रंग दिया गया है।

उनका स्वतंत्र नाटक 'संगीत शारदा' (1899) है। इस नाटक को 1899 में किर्लोस्कर मंडली द्वारा थिएटर में लाया गया था। इस नाटक में सामाजिक मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक से तत्कालीन समाज द्रवित हो उठा। इस नाटक ने 'जरथ-कुमारी विवाह' के ज्वलंत मुद्दे को उठाया है। बाला-जरथ विवाह नाटक का विषय है और देवलजी ने मानव मन, दृष्टिकोण और समाज पर गहरी नज़र डाली है। विषयवस्तु की गंभीरता, गहन चरित्र-चित्रण, सहजता से लिखे गए संवाद, परिस्थितिजन्य एवं रुचिपूर्ण संरचना आदि के कारण इस नाटक का महत्व लंबे समय तक मन में बना रहा। इस नाटक को देखने के बाद, कई बुद्धिमान लोगों ने जराथों द्वारा युवा लड़कियों से शादी करने की शिकायत की। मुख्य रूप से उस समय संमतीवय के कायदे को "शारदा एक्ट" कहा जाता था। दरअसल यह अधिनियम 1891 में पारित किया गया था। यह नाटक 1899 में रंगभूमि में आया था। हालाँकि, यह नाटक इतना प्रभावशाली था कि लोगों ने उस कानून को नाटक से जोड़ दिया। मराठी रंगमंच 'शारदा' नाटक के साथ जीवन के सवालों को सामने लाता नजर आता है। सुधारवादी विचारों का पुरस्कार उनके नाटकों से स्पष्ट होता है। साथ ही देवलजी ने किर्लोस्कर के संगीत नाटकों की परंपरा को सफलतापूर्वक जारी रखा। उन्होंने अपने नाटक में संवाद के माध्यम से नाटक की भाषा का आदर्श पाठ रखा है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए कि उनके सभी नाटकों में स्वाभाविक, लयबद्ध भाषा व्यक्त हुई है। देवलजी से पहले इस विषय पर कुछ नाटक लिखे गए थे। उदाहरण के लिए, वा. ना. डोंगरे द्वारा 'संगीतमय वसंतोत्सव' (1887), पु. भा. डोंगरे द्वारा 'जराठोद्वाह' (1890), मो.वी.शिंगणे का 'कन्याविक्रयदुष्परिणाम' (1895) आदि। लेकिन इनमें से किसी ने भी समाज के मन को प्रभावित नहीं किया है। तब से, ऐसे ज्वलंत सामाजिक मुद्दे के लिए देवलजी की प्रतिभा ने जनता को मुद्दे की गंभीरता के बारे में आश्वस्त किया। कहा जा सकता है कि इस नाटक ने वास्तव में मराठी सामाजिक नाटक की नींव रखी।

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर:

1896 से 1910 तक श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर किर्लोस्कर नाटक मंडली के एकमात्र नाटककार थे। 'वीरतनय' (1894), 'मूकनायक'(1897), 'गुप्तमंजूष'(1901),'मतिविकार' (1906)। 'प्रेमशोधन' (1908), 'वधूपरीक्षा' (1912), 'सहचारिणी' (1917), 'परिवर्तन' (1917),

'जन्मरहस्य' (1918), 'शिवपवित्र्य' (1921) 'श्रमसाफल्य' (1928), 'मायाविवाह' (1928) जैसे बारह नाटक लिखे हैं। कोल्हटकर ने अपने नाटकों में सामाजिक सुधार से संबंधित विषयों पर प्रकाश डाला है। उदाहरणार्थ, 'वीरतनय' में वैधव्य, 'मूकनायक' में शराब के दुष्परिणाम, 'गुप्तमंजूष' में स्त्री शिक्षा आदि का चित्रण किया गया है|।

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर:

खाडिलकर का पहला नाटक 'सवाई माधवराव का मृत्यु' (1893) था और उनका आखिरी नाटक 'त्रिदंडी संन्यास' (1936) था। 1901 में उनके नाटक 'कांचनगडची मोहना' को महाराष्ट्र मंडली द्वारा मंच पर लाया गया। तब से, खाडिलकर ने मंच पर प्रभावशाली शुरुआत की। उनके नाटक 'कीचकवध' (1907), 'भाऊबंदकी' (1909), 'मानापमान' (1911), संगीत विद्याहरण (1913), 'सत्त्वपरीक्षा' (1914), 'स्वयंवर' (1916) ने 'खाडिलकर युग' का निर्माण किया। मराठी रंगमंच के इतिहास में 'कीचकवध' नाटक को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनके नाटकों में सिद्धांत और देशभक्ति की दो मुख्य नाट्य प्रेरणाएँ देखी जा सकती हैं। खाडिलकरजी के कई नाटक लोकमान्य तिलक के राजनीतिक दर्शन और स्वशासन की आकांक्षाओं को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, नाटक 'भाऊबंदकी' में रामशास्त्री प्रभुणे के चरित्र-चित्रण में लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व की छाया है। 'संगीत' और 'विनोद' उनके नाटक की दो ताकतें कही जा सकती हैं। खाडिलकर ने केवल मनोरंजन के लिए हास्य की रचना नहीं की; उनका अभिप्राय हास्य की बजाय व्यंग्य और अतिशयोक्ति प्रतीत होता है। जैसे 'कीचकवध' में मैत्रेय, नमकशास्त्री और भाऊबंदकी में चमकशास्त्री के चरित्र समकालीन सामाजिक जीवन की प्रवृत्ति के द्योतक कहे जा सकते हैं। उन्होंने पौराणिक एवं ऐतिहासिक कहानियों का चयन करके वर्तमान स्थिति पर टिप्पणी की है।

'केसरी' के बाद 'नवाकाल' की बागडोर संभालने वाले खाडिलकर के नाटक पौराणिक कहानियों के इर्द-गिर्द गुंथे नजर आते हैं। उन्होंने एक परिचित कहानी से अभीष्ट दर्शन प्रस्तुत किया है। 'संगीत विद्याहरण' नाटक में उन्होंने शुक्राचार्य का चित्रण किया है, जो शराब का आदी है और अविवेकपूर्ण व्यवहार करता है, सांप्रदायिक निष्ठा और पितृभक्ति के संघर्ष में फंसा हुआ है। साथ ही उन्होंने शराब के दुष्परिणामों को दर्शाते हुए कच के माध्यम से विवेक से काम लेने वाले युवाओं को खडा किया है। उन्होंने 'बायकांचे बंड' नाटक लिखा। इस नाटक में महिलाओं और उनकी नई जीवन शैली पर टिप्पणी की गई है। इस नाटक की प्रतिक्रिया स्वरूप गिरिजाबाई केलकर ने 'पुरुषांचे बंड' नाटक लिखा। पुरुषों के अविवेक पर टिप्पणी की गई है। यह नाटक 1907 में थिएटर में आया। उस समय उस नाटक का निर्माता गुमनाम था। 1913 में उनका यह नाटक पुस्तक रूप में सामने आया।

'एकच प्याला':

राम गणेश गडकरी का पहला नाटक 'प्रेमसंन्यास'(1912) था, उसके बाद 'पुण्यप्रभा' (1916), 'भावबंधन' (1919), ' एकच प्याला' (1919) और 'राजसंन्यास' (अपूर्ण 1922) थे। श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के नाटक और हास्य का गडकरी पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा था। वे उनका शिष्य कहलाने में स्वयं को धन्य महसूस करते थे। इसलिए, गड़करी के नाटकों में कविता और हास्य दिखाई देता है। गडकरी का नाटक हास्य, बौद्धिक प्रतिभा और मौखिक उद्धरण से संपन्न प्रतीत होता है। भव्यता, अतिशयोक्ति उनके नाटकों का स्वभाव प्रतीत होता है। मराठी में उनका नाटक 'एकच प्याला' शोक की भावना को प्रभावी ढंग से व्यक्त करता है। उनके नाटकों में मानवीय स्वभाव एवं भावनाओं का चित्रण भावपूर्ण प्रतीत होता है। गडकरी ने शेक्सपियर की 'शोकात्मक शैली' की अंतर्निहित विशेषताओं को मराठी में विकसित करने का प्रयास किया। उन्होंने शेक्सपियर की नाट्य तकनीकों जैसे नाटक निर्माण की तकनीक, संवाद पद्धति, हास्य, आत्मभाषण की काव्यात्मक लय, जीवन के विभिन्न आविष्कार, व्यापक जीवन सामग्री का उपयोग किया है। 'एकच प्याला' नाटक का प्रभाव जनमानस पर लंबे समय तक रहा। नाटक की विषयवस्तु में तलीराम का अत्यधिक शराब पीना और उसके परिवार का विनाश एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। प्रस्तुत नाटक में पात्र सिन्धु की भाषा गड़करी शैली का उत्तम उदाहरण कही जा सकती है। गडकरी का यह शोकात्म नाटक काफी लोकप्रिय रहा था। यह इस तथ्य को रेखांकित करता है कि अत्यधिक शराब का सेवन परिवार के विनाश का कारण बनता है। इस नाटक ने बहुत अधिक शराब पीने वाले व्यक्ति को 'तलीराम' कहने का चलन बना दिया। उनका 'भावबंधन' हास्य के कारण लोकप्रिय हुआ। नाटक 'भावबंधन' में कामण्णा की हास्य भूमिका नाटक को लोकप्रिय बनाई है। गडकरी के नाटकों में हास्य स्वाभाविक, परिस्थितिजन्य और शाब्दिक है। 'प्रेमसंन्यास' नाटक में विसरभोला गोकुल का किरदार मराठी थिएटर में एक अविस्मरणीय कॉमेडी किरदार है। 'प्रेम संन्यास', 'एकच प्याला', 'राज संन्यास' ये गडकरी के शोकात्म नाटक है। उनके नाटक मानव मन में अच्छी और बुरी प्रवृत्तियों के अंतर्संबंध को उजागर करने का प्रयास करते हैं।

भार्गवराम विट्ठल वरेरकर:

उन्होंने अपने थिएटर करियर की शुरुआत नाटक 'हाच मुलाचा बाप' (1917) लिखकर की। प्रस्तुत नाटक में दहेज के मुद्दे को उठाया गया है। वरेरकर के नाटकों में सामाजिक मुद्दों पर विशेष जोर दिया गया है। खासतौर पर उन्होंने अपने नाटकों में विवाह, दहेज और महिला मुद्दों को महत्वपूर्ण स्थान दिया। यह नाटक बंगाल की स्नेहलता नाम की 14 वर्षीय लड़की का जिक्र करता है, जिसने दहेज के कारण खुद को आग लगा ली थी। यह संदर्भ नाटक मे आता है, नाटक में दिगंबर पंत की बेटी (यमुना) भी खुद को मारने के बारे में सोचती है। उनके गरीब पिता

दहेज नहीं दे सकते और रावसाहेब दहेज लेने की कोशिश करते हैं। रावसाहब के बेटे वसंत और उनकी बहन मंजिरी दहेज के खिलाफ हैं। यह तत्काल सुधार की तस्वीर है। परंपरा और आधुनिक चिंतन का दर्शन यहीं होता है। आज भी महाराष्ट्र में कुछ जगहों पर, खासकर पश्चिमी महाराष्ट्र में कुछ लोगों के बीच चोरी-छिपे दहेज लेने की प्रथा जारी है। यह सच है कि महाराष्ट्र में आज भी दहेज प्रथा पूरी तरह खत्म नहीं हो पाई है।

मराठी नाटक में लोकमान्य तिलकजी का संदर्भ:

लोकमान्य तिलकजी और उनके विचारों ने लोकमान्य तिलक के युग के कई नाटककारों को प्रेरित किया। तिलक और उनके समाचार पत्र 'केसरी' का उस समय के समाज पर चौतरफा प्रभाव था। कई लोग तिलक के विचारों का प्रचार करने के लिए नाटक लिख रहे थे। दामोदर विश्वनाथ नेवालकर उनमें से एक थे। उनका नाटक 'संगीत दंडधारी' 1907 में मंच पर आया। प्रस्तुत नाटक उस समय के समाज सुधारकों पर एक आलोचना है। लोकहितवादी, फुले, आगरकर, रानडे, शाहू महाराज, लाहुजी सालवे, प्रबोधनकर ठाकरे, सुधारकों की यह पंक्ति उस समय की पृष्ठभूमि में कही जा सकती है। दामोदर विश्वनाथ नेवालकर के मन में लोकमान्य तिलक पर भक्ति थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह तिलक के विशेष 'आंतरिक मंडल' से वे संबंधित थे। (इसका प्रमाण यह है कि दामोदर राव उन विशेष मंडलियों में से थे जिनके प्रकाशन से पहले बलवंतराव तिलक जी का 'गीतारहस्य' पढ़ा था।) नेवालकर के कई नाटक तिलक-विचार से जुड़े हैं। उनके प्रसिद्ध और बहुचर्चित नाटक 'मनोविजय', 'धर्ममहस्य' और 'संगीत दंडधारी' हैं।

'संगीत दण्डधारी' नाटक के पाँच अंकों में बाईस प्रविष्टियाँ हैं। इस नाटक में अट्ठासी पद या गीत हैं। नाटक में पदों का कार्य है, जो घटित हुआ है उसे व्यक्त करना और उस पर प्रतिक्रिया देना। प्रस्तुत नाटक में पुनर्विवाह मुख्य विषय है। तत्कालीन समाज सुधारवादी चर्चों ने इस मुद्दे पर अपना ध्यान केन्द्रित किया था। पाठक इस बात को नाटक की शुरुआत से ही नोटिस कर लेता है। नाटककार इन समाज सुधारकों को लगभग मूर्ख के रूप में रेखांकित करते प्रतीत होते हैं। नाटक में नेता के रूप में आने वाला पात्र 'काकशीर्ष' (अर्थात 'कौवों का नेता!) है। किरदार की भाषा और पहनावे को देखते हुए वह गोपाल कृष्ण गोखले से संबंधित है। नेवालकर ने 'दंडधारी' से सुधारकों का उपहास किया है। जैसे ही रेवती काकशीर्ष से गर्भवती हो जाती है, उसी वक्त वह उसे छोड देते है। नाटक के अंत में रेवती राष्ट्रवादी 'दंडधारी' के सामने अपने सारे 'पाप' कबूल करती है और माफी मांगती है। आपको पता चल जाएगा, कि ये दंडधारी लोकमान्य तिलक हैं। नाटक में दण्डधारी के साथ मौजूद भारद्वाज और चक्रदण्ड नाटक में एक बार भी दण्डधारी की बातों से आगे नहीं बढ़ते। नाटक के अंत में नाटककार दिखाता है कि काकशीर्ष दण्डधारियों के चरणों में गिर जाता है। कुल मिलाकर, दंडधारियों की भूमिका ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष करने के लिए

मावल और जाहल पार्टियों के एक साथ आने (अपने सुधारवादी मतभेदों को किनारे रखकर) की है, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रो. विजय तापस नाटक के अतीत और वर्तमान संदर्भ में कहते हैं, "महिलाओं के संबंध में परंपरा और धार्मिक, प्रतिक्रियावादी हमेशा बहुसंख्यक रहे हैं, जैसे वे आज भी हैं। सत्ता और राजनीति में कल का यह पराजित वर्ग न केवल आज की सत्ता को, बल्कि समाज, संस्कृति, शिक्षा और अर्थव्यवस्था को भी नियंत्रित कर रहा है। इस वर्तमान स्थिति के कई अंतर्निहित संकेत संगीत दंडधारी में 'बिटवीन द लाइन्स' के रूप में पढ़े और देखे जा सकते हैं। जब नाटककार ऐसी ही घटनाओं की एक श्रृंखला रचता है, जिसमें सुधारकों का वर्ग जहल और नीतिवादी पार्टी के सामने निष्क्रिय दिखाई दे, उनके सुधार विशुद्ध स्वार्थी दिखाई दें, तब नेवालकर को एक नाटककार के रूप में नहीं, बल्कि एक नाटककार के रूप में याद किया जाता है तिलक पार्टी द्वारा नियुक्त प्रवक्ता।"[2]

यह नाटक सुधारवादी पुरुषों और महिलाओं के श्रोता वर्ग और उस पर पश्चिमी प्रभाव को प्रस्तुत करता है। उनके संवाद और तौर-तरीकों से थोड़ा-बहुत मजाक भी दिखाया गया है। बूट, मोजे, महिलाओं की अलमारी में सेंट, महिलाओं की जैकेट, पुरुषों के अंग्रेजी सूट, सिगार, अंग्रेजी शराब, महिलाओं के माथे की टिकियां, महिलाओं के नाइट बेड-गाउन आदि। प्रस्तुत नाटक महिलाओं की संस्था 'बेलगांव स्त्री संगीत नाटक मंडली' द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसकी सभी भूमिकाएँ महिलाओं द्वारा निभाई गईं। लोकमान्य तिलक इस प्रयोग में उपस्थित थे और उन्हें यह पसंद आया। इस बात का जिक्र यहां जरूरी हो जाता है।

अनंत हरि गद्रे ने अपने नाटक लेखन की शुरुआत 1919 के नाटक 'स्वराज्य सुंदरी' से की। नाटक पाँच अंकों में है और इसमें 23 प्रविष्टियाँ हैं। 'स्वराज्यसुन्दरी' के पाँच अंकों में 57 गीत हैं। संख्यात्मक दृष्टि से यह पद संख्या 14, 15, 13, 11 तथा 5 है। यह छंद भी संभवतः नाटककार का अपना है, क्योंकि छंदों में काव्य कम और गद्य कथन अधिक हैं। यहां बता दें कि गद्रे एक पत्रकार थे। अनंत हरि गद्रे एक सामाजिक कार्यकर्ता, सामाजिक विचारक, उपक्रमधुरीण और अस्पृश्यता निर्मूलक थे। उनका लोकाचार स्वतंत्रता-समानता-बंधुत्व को अस्तित्व में लाना था। उन्हें एहसास हुआ कि नाटक सामाजिक परिवर्तन का एक बड़ा मंच है। निःसंदेह तिलक के विचारों और व्यक्तित्व का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा। संभवतः इसी से 'संगीत स्वराज्यसुन्दरी' का जन्म हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाटक लोगों के स्वराज्य अभियान को बढ़ावा देने और समर्थन देने, इस अभियान को ताकत और जन समर्थन देने के लिए रचा गया था। स्वराज्य की माँग के लिए तिलक इंग्लैण्ड गये। गद्रे ने यह कल्पना करते हुए नाटक लिखा है, कि 'स्वराज्य' नामक एक सुंदरी है और तिलक उसे स्वयंवर में लाने के लिए इंग्लैंड जाते हैं। इस नाटक में तिलक से

लिया गया पात्र 'हिन्दवीर' है। नाटक के अंत में हिंदवीर और स्वराज्यसुंदरी का विवाह हो जाता है। इसका मतलब यह है कि लोकमान्य तिलक ने हिंदुस्तान में स्वराज लाने का अग्रणी काम किया है। यह नाटक मवाळ दल और मवाळ मंडळीं की यथासंभव बुरी तस्वीर पेश करता है। कुल मिलाकर स्वर यह है कि देश में झगड़े का कारण मवाळ दल हैं। 1919 में नाटक 'स्वराज्य सुंदरी' को लोगों का भरपूर समर्थन मिला। उनका एक कारण उस समय लोकमान्य तिलक भी थे। हालाँकि आज इस नाटक को पढ़ते हुए इसके कुछ दोष नज़र आते हैं। एक तो ब्रिटिश साम्राज्य की अति प्रशंसा करना, इसके कारण नाटक पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध नहीं लगाया। व्यक्ति जिस समय और संस्कृति में रहता है उसी के अनुरूप कार्य करता है। इसके अलावा नाटककार जिस कालखंड में काम करता है उस काल के परिप्रेक्ष्य से भी प्रभावित होता है। प्र, ना, परांजपे कहते है, "मनुष्य पूर्णकालिक वास्तविकता या सामाजिक वास्तविकता में ही नहीं रहता। हमारे अस्तित्व में कुछ और आंतरिक, कालातीत दिशाएँ हैं। विशेष भाषाई आधार पर विकसित होने वाली कई चीजें सांस्कृतिक अभ्यास में अपरिहार्य हैं, जो आंतरिक दृष्टि को स्वतंत्र गुंजाइश देती हैं, जैसे कभी-कभी भविष्य की घटनाओं का वैचारिक अनुसंधान, कभी-कभी ऐतिहासिक अतीत का अवलोकन या सौंदर्य तत्वों की अभिव्यक्ति।"[3]

आदिबंध 'माईसाहेब' नाटक:

नारायण विनायक कुलकर्णी के नाटक 'माईसाहेब' का मंचन 27 दिसंबर 1919 को 'लोकमान्य नाटक मंडली' द्वारा फैजपुर श्रीराम नाट्यगृह में किया गया था। इस नाटक के प्रयोग लगातार चार वर्षों तक महाराष्ट्र में चल रहे थे। 'माईसाहेब' नाटक उस समय के रंगमंच में एक मील का पत्थर था। यह नाटक आदिबंध 'सावत्र माता' का आविष्कार है। 'आदिबंध' शब्द को 'आदिरूप, आदिबंध या मूलकार, एक विशेष प्रकार के व्यक्ति, व्यवहार या वस्तु का प्रतिनिधि पैटर्न' के रूप में परिभाषित किया गया है। मातृ-पूजक भारतीय समाज में 'सौतेली माँ' को अनेक कहानियों में गहरे रंगों में चित्रित किया गया है। नाटक इसी गहरे रंग का नाटकीय आविष्कार है। 'माईसाहेब' तीन अंकों का सामाजिक गद्य नाटक है।

नाटक की शुरुआत से अंत तक, होने वाली घटनाओं के लिए माईसाहब (उनको अपना बच्चा भी है) जिम्मेदार है। अन्नासाहेब को अंधेरे में रखते हुए, बल्कि इस बात का पूरा ख्याल रखते हुए कि उन्हें सच्चाई का पता नहीं चलना चाहिए, उत्तम और कमला को माई केशवमामा और प्रेमाबाई की मदद से कई तरह से प्रताड़ित किया जाता है और कभी-कभी पीटा जाता है। जैसे जहर देना, झूठा साबित करना। इस नाटक में कई घटनाओं का अंतर्संबंध है जो उत्तम और कमला को पानी में लाने का प्रयास करती हैं। नाटक के अंतिम भाग में कानून का आविष्कार करने वाले माईसाहेब के सभी पहलुओं को उजागर किया गया है। फिर वह उत्तम और कमला को

सौतेली माँ के रूप में नहीं, बल्कि 'माँ' के रूप में स्वीकार करती है। यह नाटक कुटुंब के एक पहलू को दर्शाती है। समाज का एक चेहरा नाटककार सामने लाता है।

'समाजोन्नती' (समाजीकरण) परंपरा और नवीनता:

वामन मंगेश दुभाशी पु.ल.देशपांडे के दादा. उनका उपनाम 'ऋग्वेदी' था। 'सर्वगिन समाजोद्धार' से लगाव के कारण उन्होंने वर्ष 1911 में 'समाजोन्नति' नाटक लिखा। प्रस्तुत नाटक 23 प्रविष्टियों और 61 छंदों के साथ पांच अंकों में है। नाटक में कुल 17 पात्र हैं।

'समाजोन्नति' नाटक के माध्यम से दुभाषींजी ने हमें यह बताया है कि, इस नाटक के माध्यम से वे 'सामाजिक विचारक' क्या कहना चाहता हैं, वो इस नाटक से कहना चाह रहे है। प्रस्तुत नाटक के लेखन के पीछे की भूमिका को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, "नाटककार को कल्पना में खेलने और दर्शकों या पाठकों की चापलूसी करने के बजाय समाज की वास्तविक स्थिति को महत्व देना चाहिए,उसके अर्थ को दर्शकों तक पहुँचाना और रचना करना चाहिए उसके मन में मौजूदा स्थिति से भी ऊंची स्थिति तक पहुंचने की आशा है।" वह आगे कहते हैं- "मेरा नाटक केवल सामाजिक है, वर्तमान समाज को कथानक में बुना गया है, और यह दर्शाता है कि सभी प्रकार के लोगों के लिए समाज को पुनर्स्थापित करने के पवित्र कार्य में योगदान देना कितना आवश्यक है। हालाँकि पुरानी और नई पीढ़ी के लोगों के बीच अंतर है, फिर भी समझौते के माध्यम से सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।"[4]

इससे इस नाटक के स्वरूप और उसका महत्त्व ध्यान मे आता है। प्रस्तुत नाटक में दो पीढ़ियों के बीच व्यवहार और सोच, उनके बीच के झगड़े, महिलाओं के पारिवारिक झगड़े, एक ऐसा वर्ग जो धर्म-रीति-परंपरा का इस्तेमाल करके सभी सुधारों का विरोध करता है, धार्मिक आचरण पर जोर देने वाले रूढ़िवादी चर्चों का बहिष्कार, जैसे कई विषय हैं। और अनैतिक आचरण, विधवाओं का पुनर्विवाह, महिलाओं के मन पर होने वाला आघात, महिलाओं का कर्तृत्व, अछूतों के मुद्दे, दहेज का मुद्दा, बाल-जरथ विवाह, सामाजिक असमानता, आधुनिक शिक्षा, वैचारिकता आदि विषयों पर चर्चा की है। नाटक का विषय एक परिवार तक सीमित न होकर पूरे समाज से जुड़ा है। वामनराव दुभाषी नाटक मे विभिन्न विषयों पर उनकी राय, उनकी वैचारिक स्थिति यहां स्पष्ट रूप से प्रस्तुत होती है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि धर्म, धार्मिकता और कर्मकांडों के संबंध में नाटककार की टिप्पणियाँ और मूल्यांकन समय से बहुत आगे थे। ऐसी कोशिशें हिंदी रंगमंच में भी शुरू से होती दिखाई देती है। हिंदी के भारतेंदु युग (1850 से 1900) हिंदी नाटककारों ने सामाजिक नाटक में महिला मुद्दों को उठाया। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, नारी शिक्षा

आदि पर चर्चा की गयी। जैसे, श्री राधाचरणदास के नाटक दुखिनी बाला (1880), प्रताप नारायण मिश्र के कलाकौतुक (1886), काशीनाथ खत्री के विधवा-विवाह आदि महिलाओं के मुद्दे पर केंद्रित हैं। इन सभी नाटकों का उद्देश्य सामाजिक सुधार लाना है।

निष्कर्ष:

1- नाटक सामाजिक परिवर्तन का एक बड़ा मंच है, यह मानते हुए कुछ मराठी नाटककारों ने मराठी में नाटक लिखे हैं।

2- ऐसा प्रतीत होता है कि मराठी सामाजिक नाटकों की शुरुआत महात्मा फुले के नाटक 'तृतीय रत्न' (1856) से हुई। महात्मा फुले ने सामाजिक प्रबोधन के लिए क्रांतिकारी कदम उठाते हुए सचेतन रूप से सामाजिक नाटक लिखे।

3- किर्लोस्कर-पूर्व युग में शेक्सपियर और विदग्ध संस्कृत जैसे दो प्रकार के नाटक किताबी नाटकों के माध्यम से मराठी रंगमंच में आए। अन्नासाहेब किर्लोस्कर ने इन दोनों को संगीत की सहायता से संयोजित किया। ऐसा लगता है कि किर्लोस्कर ने 'शाकुंतल' (1980), 'सौभद्र' (1882) जैसे पौराणिक नाटकों को एक नया अवतार दिया है। यह मराठी रंगमंच में संगीत नाटक की परंपरा है। ऐसे में सामाजिक मुद्दों को दर्शकों के सामने रखा जाता नजर आता है।

4- लोकमान्य तिलक के समय के कुछ नाटककारों ने लोकमान्य तिलक और उनके विचार, दर्शन,देश प्रेम को अपने नाटकों का विषय बनाया प्रतीत होता है। जैसे दामोदर विश्वनाथ नेवालकर की 'संगीत दंडधारी' (1907),अनंत हरि गद्रे की 'स्वराज्य सुंदरी' (1919),खाडिलकर की 'कीचकवध' (महाभारत में भीम द्वारा कीचक की हत्या)। खाडिलकर की 'कीचकवध' एक राजनीतिक नाटक है। इस नाटक पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। यह महाभारत की कहानी 'कीचकवध' पर आधारित है। पाठकों और दर्शकों को नाटक को समकालीन राजनीति के प्रतिबिंब के रूप में अनुभव किया होगा। क्योंकि 'भीम' के रूप में यह नाटक उस समय के राजनीतिक नेतृत्व का अनुभव बताने की कोशिश के तौर पर देखा जाता है।

5- देशभक्ति और समाजोद्धार नाटक में दिखाई देने वाली दो मुख्य नाटकीय प्रेरणाएँ हैं। जैसे खाडिलकर के कई नाटक लोकमान्य तिलक के राजनीतिक दर्शन और स्वशासन की आकांक्षाओं को दर्शाते हैं। साथ ही नाटककार पात्रों के माध्यम से समसामयिक सामाजिक जीवन की प्रवृत्तियों को दिखाकर वर्तमान स्थिति पर टिप्पणी करते नजर आते हैं।

6- इस काल के नाटककारों द्वारा नारी शिक्षा, नारी सुधार, उनके आर्थिक अधिकार, नारी की स्वतंत्रता जैसे मुद्दों को समाज के सामने रखा जाता है।

7- स्त्री शिक्षा और वयस्क विवाह के सुधारवादी विचारों की वकालत करते हुए सामाजिक मुद्दों को लोगों के सामने रखा गया, जैसे नारायण बापूजी कानिटकर ने 'तरुनिशिक्षण नाटिका' (1886), 'न्यायविजय' (1892) लिखीं।

8- जरथ-कुमारी विवाह तब से एक ज्वलंत मुद्दा रहा है। नाटक का विषय बाला-जरथ विवाह रहा है। गो. ब. देवल (संगीत शारदा), पु. भा. डोंगरे द्वारा 'जराठोद्वाह' (1890), मो.वी.शिंगणे का 'कन्याविक्रयदुष्परिणाम' (1895) कृ. प्र. खाडिलकर का 'संगीत विद्याहरण' आदि।

9- लगता है कि नाटककारों को इस बात का एहसास हो गया है कि समाज में नशे की लत बढ़ती जा रही है,इसीलिए उन्होंने शराब के दुष्परिणामों का चित्रण करके समाज को जागरूक करने का प्रयास किया है। जैसे श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर की 'मूक नायक', राम गणेश गडकरी की 'एकच प्याला' आदि।

10- ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार सामाजिक मुद्दों का प्रतिनिधित्व करने के लिए पारिवारिक समय चुनते हैं। 'परिवार' के प्राथमिक तत्व राजनीतिक नेताओं, समाज सुधारकों के दार्शनिक स्वरूप को दर्शकों के सामने रखने की योजना बनाई गई है। नाटककार पारिवारिक परिवेश से लेकर सामाजिक 'घटनाओं', उसके 'स्वरूप और अर्थ' की खोज करते नजर आते हैं।

सारांश:

सामाजिक और राजनीतिक रूप से, 1885 से 1920 तक का समय एक उन्नतिशील काल था, इसलिए यह मराठी नाटक के लिए भी एक उत्कर्ष काल था। प्रस्तुत नाटक का कालखंड मराठी नाटक की शैशवावस्था से वयस्कता या पुष्पन काल तक की यात्रा है। प्रारंभ से लेकर 1920 तक मराठी सामाजिक नाटक लेखन और नाट्य प्रयोगों को ध्यान में रखते हुए फुले, किर्लोस्कर, देवल, गडकरी, खाडिलकर, दुभाशी आदि नाटककारों ने नाटक लेखन के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं के संदर्भ प्रस्तुत किए हैं। उस समय के नाटक लेखन ने महिलाओं की शिक्षा, महिलाओं के सुधार, उनके आर्थिक अधिकारों, महिलाओं की यौन स्वतंत्रता पर सवाल उठाए हैं।

'कला' तत्व का विकास ब्रिटिश शासन और स्वदेशी समाज, संस्कृति और परंपरा के माध्यम से हुआ था। कला की इस विकासात्मक प्रक्रिया के माध्यम से नाटककार 'स्व' की खोज करते नजर आते हैं। इस 'स्व' में परंपरा और नवीनता का मिश्रण हो गया। उसी से नये 'स्व' का घाट निर्मित हुआ। कुल मिलाकर, इन सभी प्रक्रियाओं में सामाजिक परिवर्तन एक महत्वपूर्ण कारक प्रतीत होता है। मराठी नाटक के माध्यम से भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तन नाटक में प्रतिबिंबित होते हैं।

कुल मिलाकर तत्कालीन सामाजिक नाटक को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का एक मंच माना जाना चाहिए। नाटक सामाजिक परिवर्तन की ओर अग्रसर है, व्यक्ति एवं समाज जीवन स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास करता नजर आता है। यह सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य से मानव जीवन को बदलने का भी प्रयास कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि मराठी नाटककारों ने उस समय के जीवन के प्रश्नों को सामने रखा है। यह भी स्पष्ट है कि उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से सुधारवादी विचारों की वकालत की। कलौघात में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है। निःसंदेह,परिवर्तन का अर्थ यह नहीं है कि समाज पूर्ण रूप से उन्नत हुआ है, इसका उल्लेख करना यहाँ अत्यावश्यक प्रतीत होता है।

संदर्भ:

1- फुले महात्मा, तृतीय रत्न, पृष्ठ संख्या-01
2- तापस विजय, कस्तुरीगंध: 'दंडधारी': बाळासाहेबांची षोडशोपचार पूजा, लोकसत्ता, 07 अगस्त 2023
3- परांजपे प्र, ना, भाषेतून भाषेकडे आणि भाषांतराकडे, प्रफुल्लता प्रकाशन, पुणे, 2017, पृष्ठ संख्या-10
4- दुभाषी वामन मंगेश, प्रास्ताविक, समाजोन्नती, सामाजिक ग्रंथ प्रसारक मंडल, मुंबई, 1911